अध्याय तैंतालीसवाँ

॥श्री गणेशाय नम:॥ श्री सरस्वत्यै नम:॥ श्री सिद्धारूढ़ाय नम:॥

"जिनकी कृपा से आत्मज्ञान प्राप्त होता है, जो हमेशा आत्मस्थिति में लीन रहते हैं, जो आत्मरूप (यानी ब्रहम रूप) धारण करके उसी स्थिति में व्यवहार करते हैं, ऐसे मेरे श्री सतगुरुजी को मेरा प्रणाम।"

हे सिद्धारूढ़ स्वामीजी, असीम आनंद तथा अव्दैत (अव्दय) प्रकट करने वाला तथा भक्तों को पार लगाने वाला अवतार धारण करके आप हुबली में प्रकट हुए, ऐसे अवतार की जयजयकार हो। सभी साधु संतों के रूप में आप ही कार्य करते हैं, हर जगह आप लोगों का उद्धार करते हैं और सर्वत्र भक्तों को प्रेम पूर्वक पार लगाते हैं। अस्तु।

सातारा (महाराष्ट राज्य का एक जिला) के पास गोंदवले नाम के एक गाँव में एक ब्राह्मण जोड़ा रहता था, वह प्रतिदिन पांडुरंग की भक्ति करते हुए सुख से घर गृहस्थी का कार्य निभा रहा था। पंढरपूर का पांडुरंग उनका कुलदेव होने के कारण वे नियमित रूप से आषाढ तथा कार्तिक महीने की एकादशी के दिन विठ्ठल के दर्शन करने के लिए पंढरपूर जाते थे। वे मुख से अविरत विठ्ठल का नामस्मरण करते थे, मन ही मन विठ्ठल के रूप का चिंतन करते थे और हृदय में भगवान के प्रति उत्कट प्रेम निर्माण करने वाले भजन गाने में हमेशा तल्लीन रहते थे। एकबार विठ्ठल ने उनकी कोख से रामदास स्वामी (सतरहवे शताब्दी के महाराष्ट्र के प्रख्यात संत, जो प्रभु श्रीराम के श्रेष्ठ भक्त थे) का जन्म होगा, ऐसा उनके सपने में प्रकट होकर उन्हें कहा। रामदास स्वामी हनुमान का अवतार होकर जिन्होंने अनेक लोगों का उद्धार किया हैं, वही फिर से शरीर धारण करके आप के कोख से जन्म लेंगे ऐसी भविष्य वाणी श्री विठ्ठल ने की। ऐसी आनंद पूर्ण वार्ता विठ्ठल ने दोनों के सपने में आकर बताने के कारण दोनों अत्यंत हर्षित हुए और उनके जन्म का सार्थक हुआ, यह समझकर उन्होंने विठ्ठल को प्रेम पूर्वक प्रणाम किया। उसके उपरांत पत्नी गर्भवती हो गयी और नौ महीनों के पश्चात उसने एक सुंदर पुत्र को जन्म दिया। उनके प्रचलित संप्रदाय के अनुसार उन्होंने पुत्र का नाम गणपती रखा तथा बचपन से ही उसे पांडुरंग की भक्ति का मार्ग दिखाया। उन्होंने आठवे वर्ष में उसका उपनयन

करके उसे नामस्मरण की उपासना करने की दीक्षा दी, उसी क्षण से उसने रामनाम जपना आरंभ किया। उठते, बैठते, काम करते समय, अविरत वह नामस्मरण करता था, इस प्रकार दृढ़ मन से अखंड उपासना करने के कारण उसके मन में वैराग्य की भावना उमड़ने लगी। पंद्रह वर्ष का होते ही वह तीर्थाटन के लिए निकल पड़ा और अनेक तीर्थों के दर्शन करते करते आखिर उसे उसके गुरुजी का स्थान मिल गया। वर्‌हाड प्रांत (महाराष्ट्र राज्य का उत्तरी भाग) में येहले नाम के एक गाँव के बाहर तुकारामचैतन्य नाम के एक महान संत रहते थे। उनकी अगाध महिमा सुनकर गणपती उनके पास गया, सतगुरुजी के समीप पहुँचते ही उसे देखकर वे बोले, "यह देखो, एक डाकू आया है।" उनके शिष्य उनके साथ ही बैठे थे, गुरुजी के शब्द सुनकर वे आश्चर्य से दंग रह गए, परंतु गणपती अत्यंत आनंदित हुआ और बोला, "आज मैं धन्य हो गया। हे भगवान, अनेक राज्य घूमकर अंत में आप जैसे निरीह महात्मा से मेरी भेंट हुई। आप के साथ रहकर आप की सेवा करने की मेरी कामना है।" तुकारामचैतन्यजी ने कहा, "अरे भाई! तुम मेरी सेवा नहीं कर पाओगे। मैं अत्यंत क्रूरता से व्यवहार करता हूँ, चाहे तो यहाँ के लोगों से पूछ लो," ऐसा कहकर उन्होंने गणपती को पत्थर फेंककर मारा; जिन पत्थरों से उसे आघात पहुँचा वे सारे पत्थर उसने स्वयं इकट्ठा किए और कहा, "मेरे लिए ये सारे पत्थर पूजनीय हैं क्योंकि इन्हें मेरे सतगुरुजी ने हाथ से स्पर्श किया है, मुझे सतगुरुजी का प्रसाद प्राप्त हुआ है।" ऐसा कहकर उसने आदर के साथ उन पत्थरों से अपने सिर को स्पर्श किया। उसपर सतगुरुजी ने उसे अपने पास बुलाया और क्रोधित होकर गालियाँ देते हुए कहा, "मेरे पैरों की अच्छी तरह से मालिश कर दे!" गणपती आगे बढ़ा और गुरुमहाराजजी के चरण देखकर आश्चर्य से दंग रह गया। मक्खन से भी नरम पैरों को उसने हाथ लगाते ही, गुरुजी क्रोधित हो उठे और उन्होंने उसे एक मुक्का मारा और कहा, "तुरंत उठ जा यहाँ से! पत्थर से भी अधिक कठिन होने वाले तुम्हारे हाथों का स्पर्श मैं सह नहीं पा रहा हूँ।" परंतु उनकी बातों का बुरा न मानते हुए गणपती शांति से हाथ जोड़कर वहीं खड़ा रहा। उसपर सतगुरुजी ने कहा, "चलो! हम दोनों जंगल जाकर बहुत सारी लकड़ियाँ ले आएँगे।" उसपर गणपती ने कहा, "गुरुमहाराजजी, आप यहीं बैठिए,

मैं स्वयं जाकर लकड़ियाँ ले आता हूँ।" गुरुवर्य ने कहा, "न जाने कैसी लकड़ियाँ तुम ले आओगे, इसीलिए मैं तुम्हारे साथ चलता हूँ।" ऐसा कहकर वे दोनों जंगल की ओर निकल पड़े। उन दोनों ने मिलकर बहुत सारी लकड़ियाँ इकट्ठा की और शिष्य की धोती से बाँध दी। लकड़ियाँ का एक गट्ठर ही बन गया; गुरुदेव ने वह गट्ठर गणपती के सिर पर रखा। सतगुरुजी ने हाथ में एक लाठी ली और शिष्य से कहा, "तुम आगे चलो, मैं तुम्हारे पीछे पीछे आ ही रहा हूँ।" उनकी बात सुनकर गणपती आगे चलने लगा। दो व्यक्तियों को भी उठाने में कष्टकारक हो, ऐसा गट्ठर सिर पर उठाकर गणपती का सिर तथा गर्दन दुखने लगे, परंतु मार्ग में एक क्षण भी अगर वह रुकता तो सतगुरुजी की लाठी का प्रहार उसके पीठ पर हो जाता| सिर पर वजनी गट्ठर, पीठ पर लाठी के प्रहार, मुख में अविरत रामनाम और लाठी हाथ में पकड़कर पीछे से चलने वाले सतगुरुजी, इस प्रकार एक घटिका वह चलता रहा। हालाँकि गणपती का मन गुरु भक्ति में ही लीन था, फिर भी सिर पर भार उठाकर उसका शरीर पूरी तरह से थक गया था। इसलिए, एक पलभर के लिए वह खड़ा रहते ही, तत्क्षण उसके पीठ पर लाठी से जोरदार प्रहार हुआ, तत्काल थका हुआ गणपती बेहोश होकर जमीन पर गिर पड़ा। शिष्य ने होश खोया हुआ देखकर सतगुरुजी का मन तड़प उठा, उसी क्षण उन्होंने उसके सिर को स्पर्श करते ही उसे होश आ गया। उसपर उन्होंने उसे उठाकर एक पेड़ की छाया में बिठाकर उसकी ओर कृपादृष्टि से देखा; सतगुरुजी का चेहरा देखते ही एक पल में उसकी सारी थकान और कष्ट दूर हो गए। गुरुवर्य हँसकर बोले, "तुम सचमुच ही एक डाकू हो, क्योंकि तुमने मेरा हृदय लूट लिया है| तुम्हारे जैसा शिष्य कभी नहीं हो सकता।" उसपर उन्होंने गणपती को निर्मल आत्मज्ञान का बोध किया, देवदेवताओं को भी दुर्लभ हो, ऐसी आत्मविद्या की निधि उसे सतगुरुजी से प्राप्त हुई। उसके पश्चात शिष्य समाधि में लीन हुआ देखकर सतगुरुजी ने उसे जगाया और कहा, "यह आत्मज्ञान दृढ़ होने के लिए नामस्मरण की उपासना तुम कभी भी मत छोड़ना। प्रतिदिन 'दासबोध' (यह प्रख्यात मराठी ग्रंथ ऊपर निर्दिष्ट श्री रामदास स्वामीजी ने लिखा है) ग्रंथ पढ़कर उसमें दिए हुए विवरण के अनुसार तुम्हारा व्यवहार सत्य तथा त्रिकाल शुद्ध (भूतकाल, वर्तमान तथा भविष्यकाल) होना चाहिए। अब

तुम अपने घर लौट जाओ और जो परमार्थ के अधिकारी भक्त तुम्हारे पास आएँगे, उन्हें नामस्मरण करने का मार्ग दिखाकर उनका उद्धार कर। अब तुम धन्य हो गए हो तथा तुम शुद्ध चैतन्य हो गए हो, इसीलिए मैंने तुम्हारा नाम 'ब्रह्मचैतन्य' रखा है।" सतगुरुजी के ये अमृततुल्य मीठे शब्द सुनकर शिष्य का गला रुंध गया, आँखों से अविरत आँसू बहने लगे; झट से उठकर उसने उनके चरण छू लिए। उसपर उसने कहा, "महाराज, आज मैं धन्य हो गया हूँ। आप कितने दयालु हैं! आप ने मुझे मेरा आत्मस्वरूप दिखाकर जैसे कोई चमत्कार ही किया हैं।" ऐसा कहकर ब्रह्मचैतन्यजी ने सतगुरुजी के फिर से चरण छू लिए और उनकी आज्ञा लेकर घर लौट आए। उनके पास असंख्य भक्तगण आते और उनकी संगति से बहुतों का उद्धार होता था, क्योंकि जिस नाम मंत्र (नामस्मरण करते समय भगवान का कोई भी नाम जपा जाता है; ब्रह्मचैतन्यजी सभी को 'श्रीराम जय राम जय जय राम' मंत्र की दीक्षा देते थे) से सभी प्राणी पार लग जाते हैं, ऐसे नाम मंत्र की दीक्षा वे सभी को देते थे।

ऐसे ब्रह्मचैतन्य गोंदवलेकर (यह उपनाम लोगों ने उन्हें प्रेम पूर्वक दिया था) का तम्मणशास्त्री विद्यासागर नाम का एक मनभावता शिष्य हुबली में रहता था। उसने तथा अन्य कुछ भक्तों ने मिलकर, जिन्हे गोंदवले गाँव जाना संभव नहीं होगा, ऐसे भक्तों के उद्धार के लिए, ब्रह्मचैतन्यजी को हुबली आने के लिए आमंत्रित किया| इस आमंत्रण को स्वीकारकर तथा सिद्धारूढ़जी से मिलने के लिए, अपने शिष्य समुदाय को साथ लेकर ब्रह्मचैतन्यजी हुबली पधारे। हुबली के सभी भक्तों ने उनकी अगवानी की तथा प्रत्यक्ष उन्हें मिलकर धन्य हो गए। सभी ब्राह्मणों ने ब्रह्मचैतन्यजी से मंत्रोपदेश लिया; उन ब्राह्मणों ने उनका सिद्धारूढ़जी से मिलना निषिद्ध है ऐसा संभ्रम निर्माण करके, किसी तरह से उन्हें सिद्धारूढ़जी के पास जाने नहीं दिया। एकबार ब्राह्मणों को साथ लिए बगैर, जब ब्रह्मचैतन्यजी एक भक्त के घर जाने के लिए बैलगाड़ी में बैठकर निकले थे, तब वे सीधा सिद्धाश्रम की ओर निकल पड़े।

इधर बिछाने पर लेटकर विश्राम करते हुए सिद्धारूढ़जी ने उठकर एक शिष्य से कहा, "संत ब्रह्मचैतन्यजी अभी पधारेंगे।" ऐसा कहकर वे आगे बढ़े, तभी उन्होंने दूर से ब्रह्मचैतन्यजी को आते हुए देखा। दौड़ते हुए जाकर

उन्होंने ब्रह्मचैतन्यजी को गले लगाया, उसी क्षण वहाँ मानो एक असीम प्रेम सागर उमड़ पड़ा हुआ दिखाई दिया, उस अमर्याद आनंद का बयान करना असंभव है। एक संत से दूसरा संत मिलकर एकरूप होते हुए देखते समय, मानो त्रिपुरासुर के वध के पश्चात शिव-विष्णु एक दूसरे से मिले हो, ऐसा मनोहर दृश्य दिखाई पड़ रहा था। जीव-शिव एकरूप होने के पश्चात जो ब्रह्मानंद प्रकट होता है, वहीं आनंद इन दोनों को भी एक दूसरे से मिलकर हुआ। उस आनंद में लीन होने के कारण वे दोनो देहभान खो बैठे; दोनों के आँखों से अविरत प्रेमाश्रु बह रहे थे। जैसे, कई वर्षों के विरह के पश्चात जब दो भाई एक दूसरे से मिलने के लिए तड़पते समय, अचानक उन दोनों की भेंट होते ही जैसे वे आनंद में लीन हो जाते हैं, उसी प्रकार वे दोनो संत आनंद में तल्लीन हुए थे। उस भेंट से हुए हर्ष के कारण पल भर के लिए देहभान खोने से उन दोनों को आसपास के जगत का भी विस्मरण हुआ। उस आनंद के केंद्र से निकली हुई आनंद की किरणों में सभी भक्त भीगकर तर कर गए। सभी भक्तों की आँखों से हर्ष की बौछार हो रही थी, जिससे सारे त्रिभुवन में आनंद समाया हुआ था। उसपर दोनों संतों ने एक दूसरे को प्रणाम किया और सिद्धजी ने ब्रह्मचैतन्यजी का हाथ पकड़कर उन्हें आसन पर बिठाया; दोनों एक ही आसन पर विराजमान हुए। सद्गुणों की खान होने वाले ब्रह्मचैतन्यजी ने सिद्धारूढ़जी से कहा, "हे सतगुरु सिद्धारूढ़ स्वामीजी, यह शरीर गोंदवले नाम के गाँव में रहता है। इस शरीर से आत्मीयता होने वाले जो मनुष्य इस हुबली में रहते हैं, उन से मिलने के लिए यह शरीर यहाँ पधारा है। उन्होंने इस शरीर को आमंत्रित करने के कारण, यह यहाँ आया है; अब आप के दर्शन करने के कारण यह शरीर अत्यंत आनंदित हुआ है| यह शरीर हमेशा 'राम राम' कहता (जपता) है तथा मुमुक्षुओं से भी कहलवाता है। मैं जो कुछ भी कह रहा हूँ वह योग्य है या नहीं इसके बारे में आप की राय बताईए।" उनके ये मधुर बोल सुनकर सिद्धजी का मन आनंदित हुआ, उसपर वे रस पूर्ण शब्दों में ब्रह्मचैतन्यजी से बोले, "इस जगत में (ईश्वर का) नाम जपने जैसा सुख नहीं, जीवात्माओं को पार लगाने वाला एक नाम ही है, साक्षात ईश्वर भी नाम ही जपता रहता है। इस दुखदाई संसार में केवल एक नाम ही श्रेष्ठ तात्पर्य है, जिसमें भक्तों का भार सहने वाला स्वयं ईश्वर गूँधा

है| नाम जपने जैसी अन्य कोई उपासना नहीं है, क्योंकि अन्य सभी उपासनाएँ मनुष्य को जन्म-मृत्यु के बंधन में फँसाती हैं, केवल नाम जपने से ही तरना संभव है और ऐसा नाम मैं जपता रहता हूँ। मैं सभी भक्तों को भी वही जपने का उपदेश करता हूँ। शिवरात्री के समारोह में यहाँ दिनरात एक सप्ताह भर नामस्मरण चलता रहता है तथा अविरत नाम की गर्जना होती है। पूर्ण वेदांत यही कहता है की रामनाम यह एक ही सत्य है, क्योंकि सभी प्राणियों के हृदय में राम ही अंतरात्मा के रूप में बसता है। लोगों का उद्धार करने हेतु आप का अवतार हुआ है, तथा रामनाम का उपदेश देकर आप जनोद्धार कर रहे हैं, इससे अधिक श्रेष्ठ अन्य कोई कार्य हो ही नहीं सकता।" सतगुरु सिद्धारूढ़जी के मुख से निकले हुए ये शब्द सुनकर ब्रह्मचैतन्य आनंदित हुए, भक्तों ने दोनों की जयजयकार की तथा उनके चरण छू लिए। उसपर सुहागिनों ने मधुर स्वर में मंगल गीत गाते हुए उन दोनों की आरती उतारी। उसके पश्चात सिद्धजी ने महाराज का हाथ पकड़कर उन्हें अंदर के कक्ष में ले जाकर उनके सामने फलाहार रखा। सिद्धजी ने स्वयं अपने हाथ से केले छीलकर उनके मुख में डाले; इस प्रकार वे दोनों एक दूसरे की आवभगत करते हुए स्नेह पूर्ण खेल में रंग गए। उसके पश्चात ब्रह्मचैतन्य महाराज सिद्धारूढ़जी की विदा लेकर निकल गए और सच्चिदानंदशास्त्रीजी (तम्मण्णशास्त्री) से आकर मिले| तब शास्त्रीजी ने उन्हें पूछा, "हे सतगुरुजी, आप का आदि तथा अंत हरिहर भी नहीं जान सकते, ऐसे आप सिद्धारूढ़ यतिवर्य से मिलकर आ गए। चूँकि, संतों की महिमा न समझने के कारण मैं आप से भावभक्ति से पूछता हूँ की यह सिद्धारूढ़जी कैसे हैं? कृपा करके मुझे बताइए।" उसपर पवित्रता का धाम होने वाले तथा जिनका हृदय राममय हुआ है, ऐसे ब्रह्मचैतन्यजी बोले, "सिद्धारूढ़जी श्रेष्ठ ज्ञान होने वाले महात्मा होते हुए वे संत ज्ञानेश्वरजी का अवतार हैं। ज्ञानेश्वरजी ने पहले महाराष्ट्र राज्य में अवतरित होकर लोगों का उद्धार किया, वही अब कर्नाटक के लोगों का उद्धार करने हेतु सिद्धनाथजी के रूप में अवतरित हुए हैं।" उनके शब्द सुनकर शास्त्रीजी अत्यंत हर्षित हुए, उसके पश्चात वे सिद्धाश्रम जाकर सिद्धारूढ़जी से मिले और उनसे कहा, "हे सिद्धारूढ़ यतिवर्य, सुना है की आप से मिलने के लिए साक्षात ब्रह्मचैतन्यजी आए थे, उनकी महिमा कैसी है, यह आप

हमारे जैसे अज्ञानी लोगों को बताइए। संतों का हृद्य संत ही समझ सकते हैं, हमें उनका अंतर्भाव समझ में नहीं आता, इसीलिए, मैं आप से पूछ रहा हूँ।" तब सिद्धारूढ़जी ने कहा, "मैं जानता हूँ की वे रामदास स्वामीजी होकर आजकल ब्रह्मचैतन्यजी का नाम धारण करके पृथ्वी पर अवतरित हुए हैं। केवल मुमुक्षु जनों के पुण्याई से उनके निर्मल शरीर का निर्माण हुआ है|" ये अर्थपूर्ण शब्द सुनकर शास्त्रीजी आनंदित हुए। इस प्रकार की अगाथ संतों की महिमा सुनकर चित्त शुद्ध हो जाता है, उसपर गुरुजी के प्रसाद से मिला हुआ बोध हृदय में प्रकट होता है। अगले अध्याय में सिद्धारूढ़जी के मनभावते तम्मणशास्त्री, जिन्हे लोग सच्चिदानंदजी के नाम से बुलाते हैं, उनकी रस पूर्ण जीवनी बयान की है। अस्तु। जिसका श्रवण करने से सभी पाप भस्म हो जाते हैं, ऐसे इस श्री सिद्धारूढ़ कथामृत का मधुर सा यह तैंतालीसवाँ अध्याय श्री शिवदास श्री सिद्धारूढ़ स्वामीजी के चरणों में अर्पण करते हैं। सबका कल्याण हो।

॥ श्री गुरुसिद्धारूढ़चरणारविंदार्पणमस्तु ॥